IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों का विश्लेषणपरक अध्ययन

अमरनाथ वर्मा, सहायक आचार्य

राजनीतिशास्त्र विभाग

सेठ नन्द किशोर पटवारी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत

शोध सारांश

भारत में धर्म सुधार के प्रणेताओं में महर्षि दयानन्द सरस्वती का विलक्षण स्थान है। बंगाल में जिस प्रकार राजा राममोहन रॉय ने धर्म सुधार का प्रर्वतन किया उसी प्रकार उत्तर भारत में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज और वेद दर्शन के प्रतिपादन क्रम में महत्वपूर्ण समाज सुधारों का प्रवर्तन किया। दोनों ही स्थितियों में धर्म सुधार सीमित अर्थ नहीं रखता धर्म के माध्यम से दोनों ही विचारकों ने समाज, राजनीति और शिक्षा के क्षेत्रों में प्रासंगिक सुधारों की रूपरेखाएँ प्रस्तुत की हैं। दयानन्द ने राज्य की एक प्रमुख संस्था के रूप में मन्त्रिपरिषद्, भी पर्याप्त महत्त्व दिया है। यह राज्य की कार्यपालिका है। राजा को सात या आठ ऐसे मन्त्रियों को नियुक्त करना चाहिए जो उसी राज्य के मूल निवासी हो धर्मात्मा एवं चतुर हो, अनुभवी हो तथा व उचित निर्णय लेने में समर्थ, कुलीन, वीर तथा साहसी हो। दयानन्द के अनुसार राजा को रक्षा, युद्ध, सन्धि तथा शान्ति व्यवस्था आदि जैसे सभी महत्वपूर्ण मामलों में मन्त्रिपरिषद् से विचसिवमर्श करना चाहिए। उसे मन्त्रियों के बहुमत वाले निर्णय का आदर करना चाहिए मन्त्रियों को भी राजा की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहिए ।

शब्द कुजी :–सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, शिक्षा, संस्कृति, आर्य समाज।

प्रस्तावना :

साम्प्रदायिक राजनीति का विकास हुआ और अन्त में भारत का विभाजन हुआ। किन्तु इस प्रकार की आलोचना से न तो पूर्णतः सहमत हुआ जा सकता है और न इसके आधार पर दयानन्द के योगदान का अवमूल्यन की किया जा सकता है वस्तुत दयानन्द के योगदान का मूल्यांकन उन विशिष्ट परिस्थितियों एवं प्रभावों के प्रसंग में ही किया जाना चाहिए जिनमें कि उनके विचारों का निर्माण हुआ। इस दृष्टि से अनेक विद्वानों ने उनकी अगाध प्रशंसा की है। आर्य समाज की उपलब्धि ब्रह्म समाज से भी अधिक रही है क्योंकि यह अधिक राष्ट्रीय है। श्री अरविन्द ने दयानन्द को आध्यात्मिक क्रियाशीलता की एक शक्ति सम्पन्न मूर्ति कहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन है, मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। महात्मा गांधी ने दयानन्द के योगदान का उल्लेख करते हुये कहा है, महर्षि दयानन्द ने धर्म जागृति बढाई आर्य संस्कृति का वेदाभ्यास का, संस्कृत भाषा का हिन्दी का प्रेम बढ़ाया अस्पृश्यता रूपी कलंक को धोने का प्रयत्न किया ऐसे सब कार्यों के लिए महर्षि का स्मरण चिरस्थायी रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।

अध्ययन के उदेद्श्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि, जीवन और चिंतन के स्त्रोत से विश्लेषण करना है।

- दयानन्द सरस्वती के जीवन परिचय का अध्ययन करना।
- दयानन्द सरस्वती के सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक का विचारों अध्ययन करना।
- दयानन्द सरस्वती के राष्ट्रवादी चिंतन का अध्ययन करना।
- भारतीय सामाजिक एवं रातनीतिक व्यवस्था में स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगदान का अध्ययन करना।
- दयानन्द सरस्वती तथा राजनीतिक, आर्थिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करना है।

शोध विधि व आंकड़ों का संग्रहण

स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों का विश्लेषण करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक आंकडों को लिया गया है। आंकडों को एकत्रित करने के लिए समाचार पत्रों, पत्र–पत्रिकाओं, जर्नल आदि का उपयोग किया गया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय

आधुनिक भारत में राष्ट्रवादी चेतना को जाग्रत करने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात प्रदेश के शहर में सन् 1824 में हुआ था। इनके मूल नाम मूल शंकर था। बालक मूलशंकर का जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था। इनके पिता मोरवी राज्य मे एक उच्च पद पर कार्य करते थे और माता धर्मपरायण उदार प्रवृत्ति की महिला थी। अपने पिता की देखरेख में मूलशंकर ने पाँच वर्ष की आयु में शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था। पिता के निर्देशन में मूलशंकर ने नीतिशास्त्र साहित्य एवं व्याकरण इत्यादि का अध्ययन 14 वर्ष की अल्प आयु में पूरी यजुर्वेद संहिता को कठंस्थ कर लिया था। दयानन्द विचारवान प्रकृति के व्यक्ति थे। दयानन्द का जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था इसलिये इनका मूर्ति पूजा इत्यादि में सम्मिलित होना स्वाभाविक था। एक बार महाशिवरात्री पर्व के अवसर पर अन्य परिजन के साथ ही शंकर व्रत रखा तथा शिव मंदिर में होने वाले रात्रि जागरण में भाग लिया। धीरे–धीरे सभी भक्तजनको नींद आ गयी लेकिन मूलशंकर जागता रहा। ऐसी घटना घटी जिसने मूल शंकर के मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि परंपरागत धार्मिक अनुष्ठान व्रत एवं मूर्ति पूजा से बालक मूल शंकर का विश्वास ही उठ गया। मंदिर में शिव की प्रतिमा पर एक चूहा उछल कूदकर रहा है और फल–फूल आदि खा रहा है जिन्हें उपासकों ने शिव की प्रतिमा को ईश्वर मानकर अत्यन्त श्रद्धा से उस पर चढ़ाये हैं। मूलशंकर के विचारवान मन में एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि यह प्रतिमा ईश्वर कैसे हो सकती है जो एक चूहे के आतंक से अपनी रक्षा नहीं कर सकती है उन्होंने उत्सुकतावश अपने पिता को तत्काल जगाकर इस घटना से सम्बंधित अपनी शंका उनको बतायी, लेकिन पिताजी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाये। इससे बालक मूलशंकर के कोमल मन–मस्तिष्क पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण मूर्तिपूजा से उन्हें विरक्ति उत्पन्न हो गयी। पारिवर में घटी अन्य दो घटनाओं जिनमें प्रथम उनकी बहिन की मृत्यु तथा द्वितीय उनके चाचा की मृत्यु से मूलशंकर का युवा मन गहरे संताप में डूब गया तथा जीवन–मृत्यु के जटिल प्रश्नों की गुत्थियों को सुलझाने में वे संलग्न रहने लगे मूलशंकर को सांसारिक कार्यों से विरक्ति उत्पन्न होने लग गयी और उनका मन ईश्वर कहीं है इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। संसार में इतने कष्ट क्यों हैं इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है इनसे मुक्ति के उपाय क्या है ? इत्यादि प्रश्नों पर विचार करने में डूबता चला गया। दयानन्द की इस नवीन उत्पन्न मनःस्थिति से उनके पिता चिन्तित हुये उन्होंने सोचा कि मूलशंकर का विवाह कर दिया जाये, जिससे मूलशंकर सांसारिक कार्यों में पुनः रूचि लेने लग जाये तथा सांसारिक किया कलापों की ओर आकृष्ट होने लगे लेकिन मूलशंकर सांसारिक बन्धनों में बंधने को एकदम तैयार नहीं थे, उनके पिता द्वारा निश्चित की गई विवाह के तिथि से कुछ दिन पूर्व ही मूलशंकर घर छोड़कर चले गये और साधु बन गये तथा अपना नाम दयानन्द सरस्वती रखा। सच्चा ज्ञान प्रदान करने में सक्षम गुरु की खोज में भ्रमण करने लगे। स्वामी विरजानन्द के सानिध्य में पहुंचकर दयानन्द को अनुभव हुआ कि जिस गुरु की खोज में वे हो गया भटक रहे हैं वह उन्हें मिल गया है। स्वज्ञमी विरजानन्द के शिष्यत्व में उनके अर्जित ज्ञान का परिमार्जन हुआ और वेदों की प्रतिकणसुनिश्चित हुआ दयानन्द ने वेदों के प्रचार के लिये देशव्यापी अभियान चलाया और इसी संदर्भ में वे बम्बई पहुंचे। 19 अप्रैल 1875 को बबई में दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना की गई। इसके बाद देश के विभिन्न स्थानों पर भी आर्य समाज की स्थापना में 1877 से लेकर 1883 तक दयानन्द सरस्वती संलग्न रहें।

सरस्वती ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति दो प्रमुख काया आर्य समाजों के संगठन को मजबूत बनाने एवं द्वितीय वैदिक धर्म एवं संस्कृ ति के अपने अभियान के संचालन हेतु उन्हें अपार जन समर्थन मिला। 17 मई 1883 ई. को सरस्वती जोधपुर पहुंचे जहां जोधपुर महाराज की कृपापात्र कृपा–पात्र नन्हीबाई ने उनके अति आदर्शवादी विचारों से खिन्न होकर उनके भेजन में पिष दिलवा दिया। जोध्पुर में स्वामीजी की समुचित चिकित्सा व्यवस्था नहीं हो पायी। इस पर वह अजमेर चले गये यही पर 30 अक्टूबर 1883 को उनका देहान्त हो गया।

सामाजिक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गुरु और सत्य की खोज में भारत के बहुत बड़े भाग का भ्रमण किया भारत में व्याप्त दरिद्रता, धार्मिक विकृतियों, सामाजिक कुरीतियों, धर्म गुरुओं के स्वार्थ का उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया। उनका यह विचार था कि जब तक भारत में फैली सामाजिक कुरीतियों का अन्त नहीं होगा, भारत का विकास असंभव है, साथ ही उनकी यह मान्यता थी कि सुधार की इस प्रक्रिया के लिए आवश्यक सब साधन व सामग्री भारत की प्राचीन गौरवमयी संस्कृति में ही मौजूद है। स्वामी दयानन्द ने भारत में समाज सुधार के यथेष्ट प्रयास किए। उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की तथा समाज सुधार के विषय में समय–समय परअपने विचार व्यक्त किए। समाज से सम्बन्धित उनके दृ ष्टिकोण को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है

1. **वर्ण व्यवस्था के पक्षधर :** स्वामी दयानन्द वर्ण व्यवस्था के पक्षधर थे किन्तु उन्होंने जन्म को वर्ण व्यवस्था का आधार नहीं माना। उन्होंने गुण और कर्म को महत्ता दी। दयानन्द ने जन्म से सब मनुष्यों को समान माना। दयानन्द के अनुसार कर्म व गुण आधारित व्यवस्था रखने से सब मनुष्य अपनी उन्नति का प्रयास करेंगे क्योंकि उत्तम वर्ण वालों को यह भय रहेगा कि यदि हमारी संतान गुणहीन रही तो वह शूद्र कहलाएगी। इसी प्रकार शूद्र वर्ण का यह प्रयास होगा कि वे उन्नत स्थिति प्राप्त करें ।
2. **आश्रम व्यवस्था का समर्थन :** दयानन्द ने वेदों द्वारा प्रस्तावित आश्रम व्यवस्था का समर्थन किया है । वेदों में 4 आश्रमों का उल्लेख है 1 ब्रह्मचर्य आश्रम 2. गृहस्थ आश्रम वानप्रस्थ आश्रम एवं 4. सन्यास आश्रम दयानन्द आश्रम व्यवस्था को श्रेष्ठतम गुणों के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हैं ।
3. **विवाह सम्बन्धी विचार :** स्वामी दयानन्द ने विवाह को एक पवित्र बंधन माना। उनकी मान्यता थी कि जो कन्या पिता के गोत्र तथा माता के कुल से निकट सम्बन्ध न रखती हो उसी से पुत्र का विवाह करना करना चाहिए। दयानन्द बाल विवाह के पक्षधर नहीं थे दयानन्द विवाह के सम्बन्ध में स्त्री–पुरुष की सहमति भी आवश्यक मानते थे।
4. **पुनर्विवाह से संबंधित विचार :** दयानन्द ने पुनर्विवाह का विरोध किया क्योंकि पुनर्विवाह क्लेश उत्पन्न करते हैं, उससे विवाह की मर्यादा व प्रेम नष्ट हो जाते हैं तथा पतिव्रत तथा स्त्रीवत धर्म का भी नाश हो जाता है। विवाह के स्थान पर स्वामी दयानन्द ने विधवा स्त्री को पुर्नस्थापित करने के लिए नियोग प्रथा का समर्थन किया।
5. **नारी उत्थान के पक्षधर : दयानंद** सरस्वती ने स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने बहु विवाह, बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा का घोर विरोध किया तथा स्त्री शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया।

   आर्य समाज के प्रयत्नों से स्थान–स्थान पर कन्या विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले गए। दयानंद ने तत्कालीन समाज में व्याप्त इस धारणा का घोर विरोध किया कि स्त्री–पुरुष की अपेक्षा हीन है। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में स्त्र –पुरुष समानता का समर्थन किया। उनका मत था कि पुरुषों के समान ही स्त्रियों को वेदों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त है। स्त्रियों यज्ञोपवीत धारण करने की भी अधिकारिणी है । समाज में स्त्रियों की महत्ता बताने के लिए दयानन्द ने कहा कि जिस कुल में पत्नि अपने पति से प्रसन्न रहती है , उसी कुल में सौभाग्य और एश्वर्य का निवास होता है जहाँ कलह होता है वहाँ दुर्भाग्य और दरिद्र स्थिर होता है।

धार्मिक विचार

स्वामी दयानन्द का प्रमुख कार्य–क्षेत्र धार्मिक था। दयानन्द सरस्वती के धार्मिक विचार स्वामी दयानन्द का प्रमुख कार्य क्षेत्र धार्मिक था। उन्होंने हिन्दू धर्म में धार्मिक मान्यताओं के नाम पर प्रचलित रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर प्रबल आक्रमण किये तथा वेदों को हिन्दू धर्म का मूल स्रोत घोषित करके, वैदिक मान्यताओं के अनुसार हिन्दू धर्म की उदार और तार्किक व्याख्याएँ प्रस्तुत की।

दयानन्द ने वेदों में प्रस्तुत ऐकेश्वरवाद को हिन्दू धर्म का मूल आधार माना तथा ऐसी प्रवृत्तियों और विश्वासों का विरोध किया जो वेदों की मूल भावनाओं के विरुद्ध थीं।

1. **धर्म की व्यक्ति उन्मुख व्याख्या :** दयानन्द धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे किन्तु उनके धार्मिक दृष्टिकोण में संकीर्णता के लिये स्थान नहीं था। दयानन्द ने धर्म की व्याख्या के प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण को अपनाया। उनके लिये धर्म पूजा और अर्चना मात्र नहीं है । दयानन्द के अनुसार धर्म का अर्थ है, ईश्वर के प्रति निष्ठा रखते हुये उदार, मानवीय और शाश्वत मानवीय मूल्यों को धारण करना दयानन्द ने धर्म को आचरण की ऐसी व्यवस्था के रूप में अभिव्यक्त किया जो व्यक्ति को सत्य न्याय के प्रति अस्थावान बनाती है तथा उसमें अन्याय और असत्य का प्रबन विरोध का साहस पैदा करती है। दयानन्द के अनुसार वेदों ने मनुष्य को आचरण के उन मूल्यों का सन्देश दिया है, जिनके प्रति समर्पित रहकर व्यक्ति धर्मनिष्ठ व्यवहार कर है । उनके अनुसार ईश्वर ने वेदों में मनुष्यों को जो कुछ करने की आज्ञा दी है , वही धर्म और जिसे करने की प्रेरणा नहीं दी है, वही अधर्म कहलाता है।
2. **एकेश्वरवाद, तथा ईश्वर के अमूर्त स्वरूप में विश्वास तथा अवतारवाद का विरोध :** दयानन्द की ईश्वर में अक्षुण्ण निष्ठा थी। वे प्रत्येक सांसारिक पदार्थ और विषय के मूल में परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करते थे दयानन्द एकेश्वरवाद के अनुयायी थे। उनके अनुसार ईश्वर के नाम भले ही अनेक हो किन्तु ईश्वर अनेक नहीं हो सकते। उन्होंने घोषित किया कि वेदों ने को अद्वितीय अर्थात् एक ही बताया है तथा दूसरा ईश्वर होने का निषेध किया है। अनुसार वह ब्रहम सर्वत्र व्याप्त है और उसका कोई आकार नहीं है, वह अमूर्त है, शब्दों में ईश्वर सदैव अद्वितीय है उस परम् ब्रह्म से भिन्न कोई नहीं है, उसका निर्विवाद है। वह शून्य भी नहीं है, किन्तु जो सच्चिदानन्द आदि लक्षणों से युक्त एकभूत परमात्मा है, वही सदैव से परिपूर्ण और सर्वत्र परिव्याप्त होकर पृथ्वी आदि सब लोकों की रचना करके उन्हें अपनी सामर्थ्य से धारण कर रहा है। वह अपने कार्य में किसी की सहायता नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिसम्पन्न है। ऐकेश्वरवाद तथा ईश्वर के अमूर्त स्वरूप में सहज आस्था के दयानन्द ने हिन्दू धर्म में प्रचलित बहु देववाद और अवतारवाद आदि का प्रवल विरोध तथा इन्हें वेद – विरुद्ध, अप्रमाणिक व विकृत प्रवृत्तियों माना। राम और कृष्ण जैसे चरित्रोंको, जिन्हें कि हिन्दू पौराणिक आख्यानों में विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। दयानन्द इन्हें ईश्वर का अवतार नहीं अपितु युग प्रवर्तक महापुरुषों और सांस्कृतिक जन–नायकों के रूप में मान्यता देते थे। इन्हें ईश्वर का अवतार नहीं अपितु युग प्रवर्तक महापुरुषों और सांस्कृतिक जन नायकों के रूप में मान्यता देते थे ।
3. **मूर्ति पूजा का विरोध** : दयानन्द की आस्था ईश्वर के अमूर्त स्वरूप में थी। वे मूर्ति पूजा के विरोधी थे। दयानन्द के अनुसार मूर्ति पूजा वेद है तथा इसका कोई प्रामाणिक और तार्किक आधार नहीं है। मूर्ति पूजा की निरर्थकता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा कि सर्वव्यापी और समस्त जड़–चेतन का सृजन करने वाले ईश्वर के स्वरूप को एक पाषाण की मूर्ति तक सीमित मान लेना ईश्वर के की सर्वव्यापकता को नकारने के समान है। उन्होंने कहा परमेश्वर निराकार व है, अतः इसकी मूर्ति हो ही नहीं सकती, यदि मूर्ति के दर्शन मात्र से परमेश्वर का हो, तो परमेश्वर के बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु पहाड़ आदि पदार्थों, जिनसे कि मनुष्य भूमियों बनाता है, उन्हें देखकर ही परमेश्वर का स्मरण किया जा सकता है। दयानन्द ने कहा कि किसी पाषाण, काष्ठ या मिट्टी से बनी मूर्ति में ईश्वर की कल्पना करना वस्तुतः ईश्वर की सत्ता का अवमूल्यन करना है । उनके शब्दों में जब परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना तथा अन्यत्र न करना ऐसे है जैसे किसी चक्रवर्ती राजा को समय राज्य की सत्ता से पृथक करके एक छोटी सी झोपड़ी का स्वामी मान लिया जा । दयानन्द की मान्यता थी कि ईश्वर की आराधना मूर्ति पूजा के आधार पर नहीं की जा सकती। उनका मत था कि भूमि पूजा की अपेक्षा एकाग्रतापूर्वक पवित्र मन से था। सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा का एकान्त में ध्यान करना, उस ईश्वर का ध्यान रखते हुए अपने आचरण में पवित्रता का निर्वाह करना ही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ अराधना है।

4. **अन्य धर्मों के संदर्भ में विचार** : दयानन्द ने ईसाई, इस्लाम, जैन व बौद्ध धर्मों की मान्यताओं की समीक्षा की, और इन धर्मों की दुर्बलताओं पर आधात किया। अन्य धर्मों की समीक्षा के प्रति दयानन्द का दृष्टिकोण पूर्वाग्रह या भावना से प्रेरित अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में कहा कि विभिन्न धर्मों की समीक्षा के पीछे उनका मन्तव्य किसी मतावलम्बी को दुख पहुँचाना या उस मत को क्षति पहुँचाना नहीं है। उन्होंने दावा किया उनका सत्यार्थ प्रकाश विरोधी मतों के प्रति किसी भी दुर्भावना से प्रेरित नहीं है । उनका मत था कि यदि उनका दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण होता तो वे हिन्दू धर्म की प्रचलित मान्यताओं का विरोध करने की अपेक्षा उन्हीं का प्रचार–प्रसार करने लगते। उन्होंने जैन, बौद्ध और चार्वाक मतों की अनेक विसंगतियों को प्रकट किया तथा यह मत प्रतिपादित किया कि इन मतों में वैदिक मान्यताओं का निराधार ही विरोध किया गया है। उस समय इस्लाम और ईसाई मत के प्रचारकों द्वारा हिन्दू धर्म के विरुद्ध की जा रही आलोचना और प्रहारों का उन्होंने स्पष्ट प्रत्युत्तर दिया। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने मुसलमानों के धर्म कथ कुरान तथा इसाईयों के धर्म ग्रंथ बाइबिल के आधार पर इन धर्मों की मूल मान्यताओं की अनेक असंगतियों व दुर्बलताओं को आलोकित किया। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज के अनेक सिद्धान्तों की भी दयानन्द ने प्रबल आलोचना की। उन्होंने इस बात पर आपत्ति की कि ब्रह्म समाज के प्रर्वतकों ने प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति का अध्ययन किये बिना ही उनके प्रति उपेक्षा और निन्दा का दृष्टिकोण धारण कर लिया तथा उनकी तुलना में पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर लिया।
5. **धर्म सुधार के संदर्भ में संगठन, शुद्धि और प्रचार** : दयानन्द ने महसूस किया कि वैदिक मान्यताओं के अनुसार हिन्दू धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए हिन्दू धर्म में अपेक्षित सुधारों, तथा इसाई और मुस्लिम धर्म प्रचारकों द्वारा हिन्दू धर्म के विरुद्ध किये जा रहे आक्रमण के सक्षम प्रतिरोध के लिए संगठित और संस्थागत प्रयास किये जाने की आवश्यकता थी। धार्मिक सुधारों के संकल्पित प्रयास के लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। पूर्व में इस्लाम या ईसाई धर्म ग्रहण कर चुके भारतीयों से उन्होंने पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित हो जाने का आह्वान किया मुस्लिम और ईसाई धर्मावलम्बियों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने के लिए उन्होंने शुद्धि आन्दोलन चलाया। उनके शुद्धि आन्दोलन की पुराणपंथी हिन्दू पण्डितों और ईसाई तथा मुस्लिम धर्माचार्यों द्वारा गंभीर आलोचनाएं की गई। निस्संदेह शुद्धि आन्दोलन ईसाई और मुस्लिम धर्माचार्यों के लिए एक चुनौती थी। दयानन्द के धार्मिक विचारों की उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है उन्होंने पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सभी धर्मों व धार्मिक मतों की दुर्बलता पर प्रहार किए तथा भारतीयों से वैदिक मान्यताओं पर आधारित दोष–मुक्त धार्मिक दृष्टिकोण को अपनाने की अपेक्षा की। दयानन्द ने अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति विद्वेष प्रसारित नहीं किया, अपितु यह अलीभाति स्पष्ट किया कि अन्य धर्मों की आलोचना का उनका उद्देश्य केवल का संधान करना है। दयानन्द ने विशेषतः ईसाई और मुस्लिम मतों के आक्रमण से हिन्दू की रक्षा के लिए जो दृष्टिकोण अपनाया वह अहकार और आत्महीनता दोनों दोषों से मुक्त था। उन्होंने विश्वास के साथ वैदिक मान्यताओं की श्रेष्ठता सिद्ध की और अन्य धार्मिक मतों में असंगतियों को प्रकट किया।

शिक्षा सम्बन्धी विचार

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में जितनी व्यावहारिक रूचि ली, उतनी बहुत कम समाज–सुधारकों ने ली उनका दृढ विश्वास था कि समुचित शिक्षा के अभाव में देशवासी कभी प्रगति नहीं कर सकेंगे।

1. दयानन्द ने शिक्षा को व्यापक अर्थ में लिया। उनके लिए शिक्षा का अर्थ था शरीर का निर्माण, इन्द्रियों की साधना और बौद्धिक शक्तियों का विकास ब्रह्मचर्य पालन को उन्होंने सच्ची शिक्षा पद्धति की एक अनिवार्य शर्त माना और शिक्षण कार्य को चरित्रवान तथा विद्वान् व्यक्तियों के हाथों में रखना चाहा।
2. महर्षि दयानन्द ने सेवानिवृत्त व्यक्तियों को जन–जातियों के बीच शिक्षा प्रसार करने की सलाह दी और शिक्षा को अन्य सभी सुधारों का मूल माना।
3. प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में उन्होंने माता–पिता को बालक का प्रथम गुरु बताया और लिखा कि माता–पिता के उपदेश से सन्तान को जितना लाभ हो सकता है, उतना और किसी से नहीं हो सकता।
4. दयानन्द सहशिक्षा के पक्ष में नहीं थे क्योंकि उनका विचार था कि लड़के–लड़कियों के चरित्र पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता। उनका आग्रह था कि प्रत्येक समाज में छात्र छात्राओं के लिए अलग–अलग शिक्षणालय होने चाहिए। लड़कों और लड़कियों के लिए। शिक्षा पद्धति और शिक्षा के विषयों में भी आवश्यकतानुसार भिन्नता जरूरी है।
5. दयानन्द ने नारी शिक्षा पर उतना ही बल दिया जितना की पुरुषों की शिक्षा पर।

6. उनका मानना था कि सभी वर्गों व जातियों के बच्चों को समानता के आधार पर प्रवेश मिलना चाहिए और धनी–निर्धन के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

राजनीतिक विचार

यद्यपि स्वामी दयानन्द ने न तो अपने युग की राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया था और न उन्होंने एक राजनीतिक चिन्तक के रूप में किसी विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन ही किया, किन्तु वे अपने युग की राजनीतिक समस्याओं और विशेषकर की भारत राजनीतिक दासता के कुपरिणामों के प्रति जागरूक थे। अतः उन्होंने धार्मिक व सामाजिक विषयों पर विचार करते हुये विभिन्न राजनीतिक विषयों पर भी अपना दृष्टिकोण प्रकट किया। यही कारण है कि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका जैसे धार्मिक ग्रन्थों में एक–एक राजनीति (राजधर्म) पर भी लिखा है। यह उल्लेखनीय है कि दयानन्द के राजनीतिक विचार में उपलब्ध राजनीतिक सूत्र, वैदिक राजतन्त्रीय एवं गणतन्त्रीय व्यवस्थाये तथा मनुस्मृति आदि के अलावा कौटिल्य के विचारों से भी प्रभावित थे रू संक्षेप में स्वामी दयानन्द के प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं –

1. **समानता का समर्थन** : स्वामी दयानन्द ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता के साथ ही उसकी समानता का भी समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में एक प्रमुख तथ्य यह है कि दयानन्द ने जन्म आधारित जाति–व्यवस्था का तीव्र खण्डन किया है जो व्यक्तियों के बीच एवं अमानवीय असमानताएँ उत्पन्न करने वाली है। उन्होंने गुण–कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है, जो अन्य व्यक्तियों पर कुछ व्यक्तियों के विशेषाधिकारों की व्यवस्था नहीं है। यह शुद्ध रूप वर्णों के पुरुषों के समान ही स्त्रियों व शूद्रों को वेदाध्ययन के अधिकार का खुला समर्थन किया। उनका मत है कि श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक सभी अधिकार महिलाओं व पुरुषों को समान रूप से प्राप्त होने चाहिए, अर्थात् इस विषय में लिंग, जन्म, जाति, धर्म या सम्पत्ति के आधार पर स्त्री व पुरुषों में भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने अन्तर्जातीय भोज एवं अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। इसके अलावा दयानन्द ने अपने द्वारा स्थापित आर्यसमाज नामक संस्था में भी सभी सदस्यों को सभी भाँति समान स्तर का माना है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं समानता तथा उनके उद्देश्य के बारे में दयानन्द के आदर्श को उनके इस कथन के संदर्भ में समझा जा सकता है, प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
2. **लोकतन्त्र का समर्थन** : दयानन्द के लोकतन्त्र सम्बन्धी विचारों पर पश्चिमी राजनीतिक दर्शन का कोई प्रभाव नहीं है। उनके विचारों का मूल स्रोत एवं आधार वैदिक राजनीतिक दर्शन एवं प्राचीन भारत की राजनीतिक परम्पराएँ है। अतः दयानन्द के राजनीतिक चिन्तन में लोकतन्त्र की मूल प्रवृत्ति तो मौजूद है, किन्तु उन्होंने वयस्क मताधिकार सामान्य निर्वाचन, दलीय व्यवस्था अथवा मात्र बहुमत के आधार पर निर्णय आदि की प्रणाली का उल्लेख कहीं नहीं किया है। धर्मवीर शास्त्री का मत है, वर्तमान में प्रचलित जनतन्त्र से महर्षि द्वारा प्रतिपादित तन्त्र दूसरा ही है जो गुणवत्ता में इससे श्रेष्ठ है। उन्होंने दयानन्द के जनतन्त्र को विशिष्ट जनतन्त्र कहना उचित समझा है। वस्तुतः दयानन्द की लोकतन्त्र सम्बन्धी धारणा की प्रमुख बातें अग्रिलिखित है
    - दयानन्द ने राजपद का समर्थन किया है, किन्तु वंशानुगत राजपददयानन्द ने प्रजाहित को साध्य और राज्य को साधन माना है।
    - वस्तुतः दयानन्द की राजनीतिक विचाराधारा में व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता तथा प्रजाहित के तत्त्व मौजूद हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने बड़ी मात्रा में लोक – कल्याणकारी राज्य की धारणा को स्वीकारा है।
    - जहाँ आधुनिक लोकतन्त्र का एक प्रमुख आधार बहु संख्या का सिद्धान्त है, वहाँ दयानन्द ने सबके हित को ही महत्त्व दिया है । उन्होंने सर्वहितकारी नियम तथा सर्वहितकारी कार्य को ही अपनी राजनीतिक व्यवस्था का लक्ष्य माना है । दयानन्द के बाद महात्मा गाँधी ने भी सबके हित की धारणा को अपने चिन्तन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है और इस आधार पर रामराज्य श तथा सर्वोदय के विचार का प्रतिपादन किया है । दयानन्द की लोकतन्त्र में आस्था इस तथ्य से भी प्रकट है कि उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज नामक संस्था अपने संगठन तथा प्रक्रिया की दृष्टि से पूर्णतः लोकतान्त्रिक

3. **राज्य के शासन–तन्त्र का संगठन :** दयानन्द ने राज्य के शासन–तन्त्र के संगठन के प्रसंग में राजा , तीन प्रकार की सभाओं तथा मन्त्रिपरिषद् का किया है। राजा का पद निर्वाचित है तथा उसकी सत्ता सभाओं तथा प्रजामत के आधीन है, अर्थात् वह किसी प्रकार निरंकुश नहीं है। दयानन्द ने राजा की स्वतन्त्रता एवं सर्वोच्चता को विनाशकारी बताया है। उन्होंने राजा को सभापति (सभाध्यक्ष) कहा है।

   दयानन्द ने शासन की अग्रलिखित तीन प्रमुख संस्थाओं का किया है राजसभा, धर्म सभा तथा विद्या सभा। उन्होंने इन तीनों सभाओं को जनता द्वारा संस्थाएँ बताया है, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने इन सभाओं की सदस्यता के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकार की योग्यताएँ बतायी है, अर्थात् उन्होंने सभी व्यक्तियों को इन संस्थाओं का सदस्य का अधिकार नहीं दिया है । इसके साथ ही उन्होंने किसी सन्यासी को भी इनका सदस्य बनाये जाने का निषेध किया है। दयानन्द द्वारा वर्णित राजसभा को व्यवस्थापिका जैसा माना जा सकता है। राजसभा के सदस्यों को आत्म –संयमी, सत्यवादी तथा वेदों का ज्ञाता होना चाहिए दयानन्द के अनुसार मात्र ऐसी राजसभा द्वारा बनाये गये कानून ही श्रेष्ठ हो सकते हैं और प्रजानन द्वारा पालन के योग्य होते हैं। दयानन्द का मत है कि एक हजार अज्ञानी एवं विलासी पुरुषों की तुलना में एक वेदज तथा आत्म –संयमी पुरुष का निर्णय उचित एवं अनुकरणीय होता है। इस प्रकार राजसभा की सदस्यता मात्र श्रेष्ठ गुणों वाले व्यक्तियों को ही प्राप्त होनी चाहिए दयानन्द के अनुसार राजसभा को धर्म सभा के अधीन उत्तम चरित्र एवं पवित्र हृदय का भी होना चाहिए, अपितु उन्हें त्यागी, उत्तम चरित्र एवं पवित्र हृदय का भी होना चाहिए। धर्म सभा का मुख्य उद्देश्य प्रजानन का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करना तथा उनके नैतिक चरित्र का उत्थान करना है और इस दृष्टि से यह पहले से मौजूद विभिन्न धार्मिक मतों तथा संगठनों में तालमेल स्थापित करेगी। राज्य की तृतीय प्रमुख संस्था विद्या सभा है, जिसके सदस्य ऐसे विशिष्ट विद्वानों को बनाया जा सकता है जो विभिन्न विद्याओं में पारंगत हो और उत्तम चरित्र वाले हो विद्या सभा का प्रमुख कार्य राज्य में शिक्षा प्रचार एवं प्रसार करना है और इस दृष्टि से वह विभिन्न शिक्षा संस्थाओं का नियमन व नियन्त्रण करेगी विद्या सभा, राज्य में अनिवार्य शिक्षा के

4. **व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन :** स्वामी दयानन्द ने समाज के सावयव सिद्धान्त तथा वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है और उन्होंने व्यक्ति के अधिकारों के स्पष्ट राजनीतिक सिद्धान्त का भी उल्लेख नहीं किया है, तो भी यह सत्य है कि उन्होंने व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा गौरव को सम्मान दिया है । वे शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के हिमायती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यक्ति को पुरोहित वर्ग की सत्ता से पूर्ण स्वतन्त्र है और सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में वे व्यक्ति को उस सीमा तक पूर्ण स्वतन्त्रता देने के पक्षधर है जिस सीमा तक यह अन्यों के लिए हानिकारक न बन जाए, अर्थात् वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता के तो समर्थक है, उसकी स्वच्छन्दता के नहीं उन्होंने व्यक्ति की स्वतन्त्रता का पूर्ण समर्थन करते हुए इस पर सार्वजनिक हित की मर्यादा को स्वीकारा है। दयानन्द का मत है, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियमों के पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहे। सर्वहितकारी नियमों के पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें। इस प्रकार उन्होंने सार्वजनिक हित की रक्षा एवं वृद्धि की दृष्टि से व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर समाज व राज्य द्वारा लगाये गये विवेकपूर्ण प्रतिबन्धों को उचित माना है।

5. **निरंकुशतन्त्र का विरोध और मर्यादित सत्ता के सिद्धान्त का समर्थन :** स्वामी दयानन्द ने किसी भी प्रकार की निरंकुश एवं अमर्यादित सत्ता को विनाश का कारण माना है और उसका विरोध किया है, फिर चाहे ऐसी निरंकुश सत्ता राजा की हो , अथवा जन समूह की दयानन्द के शब्दों में, एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार नहीं देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति है उसके आधीन सभा सभा के आधीन राजा, राजा और सभा, प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे। इसी प्रसंग में पुनः दयानन्द का कथन है, जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग (राजा व उसके सहायक आदि) रहें तो राज्य में निवास करने वाली प्रजा का नाश किया करें। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन नहीं करना चाहिए जैसे सिंह हष्ट–पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है। दयानन्द ने राजा सभा अथवा प्रजा इनमें से किसी भी एक की पूर्ण सत्ता को अस्वीकार करके निरंकुशतन्त्र की समस्त प्रवृत्ति का ही विरोध किया है। वस्तुतः आधुनिक शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने मर्यादित सत्ता के सिद्धान्त का समर्थन किया है और इसके साथ ही इस विचार पर बल दिया है।

6. **कर–व्यवस्था सम्बन्धी विचार** : स्वामी दयानन्द ने कर व्यवस्था के बारे में मूलत मनुस्मृति का अनुकरण किया है। राजा व राजसभा को कर नीति ऐसी बनानी चाहिए जो राजा, राजपुरुषों तथा प्रजाजन के सुखों में वृद्धि करने वाली हो। राजा को प्रजा से इस प्रकार अल्प मात्रा में थोड़ा–थोड़ा वार्षिक कर लेना चाहिए जिस प्रकार जॉक, बछड़ा तथा भँवरा थोड़ी–थोड़ी मात्रा में अपने ओग्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं। राजा को अति लोभ के वशीभूत होकर अधिक कर नहीं वसूलना चाहिए, क्योंकि ऐसी कर–नीति प्रजा के साथ–साथ राजा के सुख के आधार को नष्ट करता है और उनके पारस्परिक प्रेम का भी नाश करती है। राजा को व्यापारी अथवा स्वर्ण व चाँदी के शिल्पी के लाभ का पचासवों भाग कर रूप में लेना चाहिए। किसानों से चावल आदि अन्नों का छठवाँ , आठवों अथवा बारहवों भाग कर रूप में लेना चाहिए। वस्तुतः राजा को किसान आदि से कर रूप में इतनी मात्रा में अन्न अथवा धन लेना चाहिए कि उनके पास खाने के लिए अन्न की कमी नहीं रहे और वे निर्धन भी नहीं रहे। जब प्रजा धनाढ्य, स्वस्थ तथा भोजन आदि से सम्पन्न होती है तो राजा एवं राज्य की अत्यन्त उन्नति होती है। अतः राजा को चाहिए कि वह प्रजा को अपनी सन्तान मानकर उसकी रक्षा करें और उसे सुख दें। इसी प्रकार प्रजा को भी राजा एवं राजपुरुषों को अपने पिता जैसा मानना चाहिए। सारांश यह है कि राजा को ऐसी कर व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए जो राजा एवं प्रजा दोनों के लिए कल्याणकारी हो, ताकि इन दोनों के परस्पर प्रेम में वृद्धि हो और वे एक दूसरे की उन्नति में सहायक हो ।
7. **राज्य के लोककल्याणकारी कार्यों का समर्थन** : दयानन्द ने राज्य को एक साधन और लोक–कल्याण अर्थात् को साध्य माना है। यजुर्वेद के आधार पर राज्य को एक किन्तु इस सावयव के प्रत्येक अंग का विकास होना चाहिए, जिसमें उन्होंने राजवर्ग के साथ ही प्रजावर्ग को भी सम्मिलित किया है दयानन्द के अनुसार राजा का यह दायित्व है कि वह यह देखे कि सावयव राज्य के एक अंग के रूप में प्रजा का भौतिक एवं नैतिक विकास हो। राजा का प्रमुख कर्तव्य है कि वह पिता के समान प्रजा का पालन करे । दयानन्द ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की को स्वीकारा है, जो राजा को प्रजा के भौतिक, आर्थिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए करती है। उनका मत है कि कोई राजा चाहे जितना शक्तिशाली, धनवान एवं वैभवपूर्ण हो, इन गुणों का लाभ एवं महत्त्व तब ही होता है जब उसकी प्रजा का चहुंमुखी विकास हो। वस्तुतः इस स्थिति में ही राजा एवं राज्य की भी अत्यधिक उन्नति होती है। यद्यपि दयानन्द के युग में यूरोप में राज्य के अहस्तक्षेप की नीति थी और इसकी प्रशंसा भी की जाती थी किन्तु दयानन्द ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक का अनुकरण करते हुये राज्य की लोक कल्याणकारी नीति का ही समर्थन किया ह।
8. **न्याय एवं दण्ड सम्बन्धी विचार** : दयानन्द ने राज्य के प्रमुख कार्यों एवं दायित्वों में न्याय की गिनती की है। न्याय के द्वारा ही शक्तिशाली अपराधी से निर्बल एवं निर्दोष व्यक्ति न्याय के समान ही दयानन्द ने दण्ड के सम्बन्ध में मुख्यतः मनुस्मृति का अनुकरण किया है। उन्होंने दण्ड को वास्तविक राजा माना है। मनु का अनुकरण करते हुये ने दण्ड को न्याय का प्रचारक तथा सबका शासक बताया है। इस रूप में दण्ड चारों वर्णों एवं आश्रमों तथा स्वयं राजा के धर्म का रक्षक होता है, अर्थात् इन्हें अपने–अपने धर्म का पालन को बाध्य करता है । अतः विद्वान् पुरुष दण्ड को धर्म (विधि का शासन) कहते हैं क्योंकि दण्ड के अभाव में धर्म नष्ट हो सकता है जहाँ दण्ड नहीं होता, वहाँ राजा, प्रजा तथा इनसे सम्बन्धित राजनीतिक संस्थाओं की मर्यादा भी नष्ट हो जाती है जो राजा दण्ड का भलीभांति प्रयोग है। उसके राज्य में धर्म, अर्थ एवं काम की अभिवृद्धि होती है, अर्थात् सामान्य कल्याण में विशेष वृद्धि होती है। यह उल्लेखनीय है कि दयानन्द ने वैयक्तिक जीवन में क्षमा एवं अहिंसा का पर्याप्त महत्त्व स्वीकारा है, किन्तु सार्वजनिक जीवन में दुष्टों के दमन के लिए हिंसा (दंड) को सर्वथा उचित बताया है। दण्ड सर्वोपरि है और इसलिए बिना किसी भेदभाव के सभी अन्यायी दण्डनीय होते हैं। पुनः मनुका अनुकरण करते दयानन्द मानते हैं कि जो राजा दण्ड का दुरुपयोग करता है, वह दण्ड दवारा ही पूर्ण विनास को प्राप्त होता है। स्वधर्म का उल्लंघन करने वाले सभी स्त्री – पुरुष दण्डनीय होते हैं, चाहे वे पिता, पत्नी, बन्धु आचार्य, पुत्र, मित्र अथवा स्वयं क्यों हो।
9. **कुशल एवं निष्ठावान प्रशासन व्यवस्था की स्थापना का समर्थन** : दयानन्द के अनुसार राजा का प्रमुख दायित्व है कि वह राज्य की रक्षा एवं प्रजा–पालन की दृष्टि से सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का संचालन करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर योग्य एवं सक्षम अधिकारियों एवं भृत्यों की नियुक्ति की जाए और उनके अधिकारअमात्यादियो सहित मृतप्राय समझा जाना चाहिए।

10. **अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर विचार** : स्वामी दयानन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार भी वेद प्राचीन वैदिक इतिहास तथा मनुस्मृति आदि को माना है। उन्होंने स्वराज्य (राष्ट्रवाद) के साथ चक्रवर्ती राज्य की कल्पना का संयोग किया है। यह उल्लेखनीय है कि यह चक्रवर्ती राज्य की धारणा आधुनिक युग की संकीर्ण शोषणकारी क्रूर तथा युद्ध–लोलुप साम्राज्यवाद की धारणा से एकदम भिन्न है। चक्रवर्ती राज्य ऐसे समस्त स्वतन्त्र राज्यों का संगठन है जिसका नेतृत्व ऐसे सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य द्वारा किया जाता है जिसका राजा (सभापति) सर्वाधिक गुणवान भी हो वस्तुतः चक्रवर्ती राज्य किसी एक राजा का राज्य नहीं है अपितु यह समस्त राज्यों का एक महासंघ जैसा है। चक्रवर्ती राज्य की धारणा का सैद्धान्तिक आधार सार्वभौम मानववाद है जिसे दयानन्द ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के विचार के रूप में प्रकट किया है जिसका सरल अर्थ है विश्व का श्रेष्ठ व्यक्तियों वाला समाज बनाया जाना चाहिए। वस्तुतः यह विचार सम्पूर्ण मानव जाति के लिए ऐसी जीवन–दृष्टि (धर्म) को अपनाने का समर्थन करता है जो सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्तो पर आधारित है और जिसे सम्पूर्ण मानव जाति सत्य भी मानती है। इस प्रकार दयानन्द ने ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा पर बल दिया है जो अपनी मूल प्रकृति से मानवतावादी एवं उदारवादी है और जिसका अन्त विश्व – बन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम की वैदिक परम्परा में होता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि दयानन्द ने सम्पूर्ण विश्व राजनीति एवं व्यवस्था के प्रसंग में नैतिक एवं आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया किन्तु इसके साथ ही उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सालवीत के थार्थनाली एवं विकोण का श्री समर्थन किया है ।

11. **प्रशासन का विकेन्द्रीकरण तथा ग्राम प्रशासन :** स्वामी दयानन्द ने राज्य के प्रशासन की आधारभूत इकाई ग्राम को स्वीकारा है। उन्होंने केन्द्रीय प्रशासन एवं ग्रामों के बीच सावयवी एवं अभिन्न प्रशासनिक सम्बन्ध का समर्थन किया है। वस्तुत दयानन्द ने का अनुकरण करते हुये ग्राम – प्रशासन के रूप में प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की योजना को किया है सम्पूर्ण ग्रामीण प्रशासन के बारे में उनके प्रमुख विचार अवलिखित है 1. प्रत्येक ग्राम का एक प्रधान मुखिया नामक अधिकारी होगा, ऐसे दस ग्रामों के ऊपर दूसरा अधिकारी, ऐसे बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा अधिकारी, ऐसे एक सौ ग्रामों के ऊपर चौथा अधिकारी , ऐसे एक हजार ग्रामों के ऊपर पाँचवाँ अधिकारी, ऐसे दस हजार ग्रामों के ऊपर छठनों अधिकारी और ऐसे एक लाख ग्रामों के ऊपर सातवों अधिकारी होगा। 2. दयानन्द के अनुसार ग्रामीण प्रशासन की समस्त इकाइयाँ एक श्रृंखला में बँधी हुई है। इस प्रशासन की निम्न इकाई का अधिकारी अपने से उच्च इकाई के अधिकारी को समस्त प्रशासनिक सूचनाएँ प्रतिवेदन के रूप में और आवश्यक गुप्त सूचनाएं प्रेषित करेगा उच्च अधिकारी का यह दायित्व है कि वह अपने से निम्न प्रशासनिक इकाई के कार्यों की समीक्षा करें तथा उसका नियन्त्रण करे। 3. ग्रामीण प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी राजसभाका सदस्य होगा। वह राजसभा स तथा राजा को सम्पूर्ण ग्रामीण प्रशासन की वस्तुस्थिति की जानकारी देगा ।

12. **प्रभुसत्ता एवं विधि सम्बन्धी विचार** : स्वामी दयानन्द ने वंशानुगत राजतन्त्र के स्वामी दयानन्द के राजनीतिक चिन्तन का कार्यक्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। उन्होंने व्यक्ति की स्वतन्त्रता व समानता, निर्वाचित एवं मर्यादित राजतन्त्र, लोकतन्त्र, प्रभुसत्ता, विधि, न्याय, दण्ड, शासन तंत्र, प्रशासनिक विक्रेन्द्रीकरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों आदि पर अपने विचार प्रकट किये हैं। यह सत्य है कि दयानन्द के राजनीतिक विचार प्राचीन भारतीय राजनीतिक परम्परा एवं चिन्तन से अत्यधिक प्रभावित हैं और राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नये राजनीतिक सिद्धान्त को भी प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु दयानन्द के राजनीतिक चिन्तन का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने परम्परागत भारतीय राजनीतिक चिन्तन की मौलिक एवं उपयोगी व्याख्या की है। उदाहरण के लिए उन्होंने राजतन्त्र एवं शासन की संस्थाओं के लोकतन्त्रीकरण का समर्थन किया है, मर्यादित राजसत्ता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है तथा प्रजानन को अनुचित राजजाओं एवं विधियों के उल्लंघन का अधिकार दिया है। दयानन्द की विशेषता यह है कि पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन से अनभिज्ञ होने के बावजूद उन्होंने प्राचीन राजनीतिक चिन्तन का आधुनिक प्रसंगों में नवीकरण किया है। उन्होंने समकालीन भारत के प्रसंग में इस राजनीतिक परिकल्पना को प्रकट किया है कि एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था कैसी होनी चाहिए। उनके चिन्तन की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि भले ही उनके राजनीतिक चिन्तन का मूल स्रोत धर्म है, किन्तु अपने तार्किक निष्कर्ष की दृष्टि से यह मूलतः धर्म निरपेक्ष है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन के नवीकरण की इस प्रक्रिया में उन्होंने अनेक ऐसे तत्वों को स्वीकारा है जो अपनी प्रकृति से आधुनिक एवं प्रगतिशील है ।

निष्कर्ष :

स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक सुधारक के रूप में भारतीय समाज के उन तमाम क्षेत्रों को झकझोर दिया जो पतन की ओर अग्रसर हो रहे थे। उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से स्वदेशी, स्वभाषा, स्वशासन को बढ़ावा देकर राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहन दिया। हिंदू धर्म में हीनता की भावना आ गई थी, उनसे धर्म को मुक्त करवाया। भारत का सामाजिक ढांचा भी विखंडित हो गया था, उसे पुनः सुधारने का प्रयास किया। स्वामी जी ने अपने विचारों को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की जो आज भी समाज सेवा की दिशा में कार्य कर रहा है।

दयानन्द ने एक ऐसी शिक्षा पद्धति पर बल दिया जो पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हो और जो ऐसे नागरिक उत्पन्न करे जिसमें समाज के प्रति कर्त्तव्यपरायणता और उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान हो। दयानन्द ने देश को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए हिन्दी का पूरे देश में प्रचलन आवश्यक माना, यद्यपि अपनी शिक्षा योजना में अंग्रेजी के अध्ययन के लिए स्थान रखा। आर्य समाज द्वारा संस्थापित शिक्षण संस्थाऐं, गुरुकुल और डी.ए.वी. कॉलेज वस्तुतः स्वामी दयानन्द के सच्चे स्मारक है। स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के उप– नियमों में भी हिन्दी को आर्य समाज के व्यवहार की भाषा बताया इसीलिए भारत में और भारत से बाहर भी जिन देशों में आर्य समाज की शाखाएँ है वहाँ हिन्दी में काम होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1971
2. पी.के. त्यागी : भारतीय राजनीतिक विचारक, विश्वकर्मा, पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2006
3. गिरीश मल्होत्रा : मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थिंकर्स , मुरारीलाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2006
4. अली मुख्तार : भारतीय राजनीतिक विचारक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, 2017
5. धरमचंद जैन कैलाश दरोगा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
6. रामरतन, रुचि त्यागी, भारतीय राजनीतिक चिंतन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा
7. सी.एम. सरस्वती, भारतीय राजनीतिक चिंतन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
8. ओमप्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा
9. ओम प्रकाश गाबा, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
10. पुष्पा बिरयानी व राजेश्वरी सक्सेना, भारतीय राजनीतिक विचारक, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
11. वर्मा, वी.पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
12. स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर